P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-8* ISSUE-8* April- 2021
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

आधुनिक युग में कबीर की वाणी की प्रासंगिकता

The Relevance of Kabir's Voice In The Modern Era

Paper Submission: 04/04/2021, Date of Acceptance: 16/04/2021, Date of Publication: 20/04/2021

ऋषिपाल
सह प्राध्यापक एवं अध्यक्ष,
हिन्दी विभाग,
बाबू अनन्त राम जनता महाविद्यालय, कौल, कैथल, हरियाणा, भारत

सारांश

मध्ययुगीन संत कवियों में कबीर का स्थान अग्रणी भूमिका में आता है। कबीर महान समाज सुधारक एवं जन–मानस के कवि थे। अनपढ़ होते हुए भी उनका व्यवहारिक एवं सामाजिक ज्ञान उच्चकोटि का था। मध्ययुगीन समाज में सन्त कवियों का आगमन तब हुआ जब तत्कालीन परिस्थितियाँ विकट एवं विपरीत थीं। समाज में अराजकता, अनपढ़ता जाति–पाति का भेदभाव, छुआछूत, धर्मों के बीच बढ़ती दूरियाँ, अमीर–गरीब के बीच वैमनस्य, अव्यवस्था, अंधविश्वास आदि विसंगतियां, कुरीतियां, विद्रूपताएं और समस्याएं परिव्याप्त थीं। कबीर ने तत्कालीन आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक परिस्थितियों को नजदीक से अनुभव किया और अपनी वाणी के माध्यम से लोगों के भ्रमों, अविश्वासों, आडम्बरों, विसंगतियों को दूर करने का सफल प्रयास किया। संत कबीर महान समाज सुधारक बन कर समाज में अवतरित हुए।

Kabir occupies a leading position in medieval saint poets. Kabir was a great social reformer and a poet of the public mind. Despite being devoid of a formal school education, Kabir's illiterate, his practical and social knowledge was of high order. The arrival of saint poets in medieval society came when the conditions then were stark and contrary. Anarchy in society, illiteracy, caste discrimination, untouchability, increasing distance between religions, discord, chaos, superstition, misconceptions and problems between rich and poor were prevalent. Kabir closely experienced the economic, social, cultural, religious circumstances of the time and through his speech made a successful attempt to remove the illusions, mistrusts, stereotypes, discrepancies of the people. Saint Kabir emerged as a great social reformer in the society.

मुख्य शब्द : संत कवि कबीर, शान्ति, संसार, भक्ति साहित्य।
Saint Poet Kabir, Peace, World, Devotional Literature.

प्रस्तावना

'संत' संस्कृत का शब्द है। ''कबीर के मतानुसार संत वे हैं जिनका कोई दुश्मन नही, जो निष्कामवृत्ति वाले हैं, साईं से प्रीति करते हैं और सांसारिक विषयों से निर्लिप्त रहते हैं। कबीर आदि ने सच्चा संत उसे माना है जो करनी पर खरा उतरता हो।''[1] अनेक विद्वानों ने 'संत' शब्द की व्युत्पत्ति शांत शब्द से भी मानी है। श्री परशुराम चतुर्वेदी के मतानुसार, ''संत शब्द उस व्यक्ति की ओर संकेत करता है जिसने सत रूपी परम तत्त्व का अनुभव कर लिया हो और जो इस प्रकार अपने व्यक्तित्व से ऊपर उठकर उसके साथ तदरूप हो गया हो, वही संत है।''[2] तुलसीदास ने भक्ति साहित्य में मानस में सज्जन के अर्थ में शब्द का विशद प्रयोग एवं विवेचन किया है। उनके मतानुसार, ''संत कोमल हृदय और करुणामय, कामना–रहित, इच्छा रहित व निष्पाप होते हैं। संतों का हर काम दूसरों के हित के लिए होता है। उन्होंने असज्जन शब्द का प्रयोग संत शब्द के विरोधी अर्थ में करके अपने अभिप्राय को पूरी तरह स्पष्ट कर दिया है – 'बरनो संत असज्जन चरणा।''[3] सन्तों ने अपनी वाणी से न केवल तत्कालीन समाज बल्कि वर्तमान में संसार की शान्ति का रास्ता अपने साहित्य–रूपी मार्ग से दिखाया है। कबीर ने समस्त देश के भू–भाग का भ्रमण किया और अपने अनुभवों को स्पष्टता के साथ अपनी वाणी से अभिव्यक्त किया।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य आधुनिक युग में कबीर की वाणी की प्रासंगिकता का अध्ययन करना है।

साहित्यावलोकन

'शोध दिशा' UGC APPROVED CARE LISTED JOURNAL विश्व स्तरीय, शोध–पत्रिका शोध अंक–53, जनवरी–मार्च 2021 में 'संत कबीर की

सामाजिक दृष्टि शोध–पत्र में डॉ॰ नाना साहेब हरिभाऊ जावले लिखते हैं कि ''महात्मा कबीर संतोषी, उदार, स्वतंत्र, अहिंसा, सत्य और प्रेम के समर्थक, बाह्याडम्बरों के विरोधी तथा क्रान्तिकारी सुधारक थे। अपने समकालीन सामाजिक एवं धार्मिक समस्याओं को ध्यान में रख कर संत कबीर ने अपनी वाणी द्वारा अनेक प्रकार के उपदेश दिए हैं।'' वे लिखते हैं कि ''ऐसे महान संत के विचारों की आज भी आवश्यकता है। संत कबीर के विचार आज भी सम्पूर्ण मानव जाति के लिए मार्गदर्शक हैं। उपरोक्त 'शोध–पत्रिका' के ही शोध अंक 53, जनवरी–मार्च, 2021 में डॉ॰ विमलेश के शोध–पत्र 'कबीर की साखियों में विद्यार्थियों के गुण व कर्तव्य' में – ''संत कबीर एक महान् समाज सुधारक थे। वे ज्ञान मार्गी के एक अद्वितीय पथिक, लोक साहित्य के अनुपम कवि, भारतीय संस्कृति के एक अद्वितीय पथिक, लोक साहित्य के अनुपम कवि, भारतीय संस्कृति के समन्वयवादी अन्तर्दृष्टा, समाज के एक सच्चे सुधारक और शिक्षा के एक व्यवहारिक पुनर्निर्माता थे। अनपढ़ होने पर भी उनका ज्ञान उच्चकोटि का था। INTERNATIONAL JOURNAL OF INFORMATION MOVEMET, VOLUME 05, ISSUE VII, NOVEMBER, 2020 में डॉ॰ आर॰पी॰ द्वारा 'वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सन्त साहित्य की उपयोगिता' में वे लिखते हैं कि ''संतवाणी ही वह गुरुमंत्र है, जो मानव को आत्म पहचान कराने में समर्थ है क्योंकि सन्तों की वाणी में अमोघ शक्ति है। त्रिविध तापों से संतप्त जनता संत काव्य के उपवन में आकर दुःख निवृति करती है।''

INTERNATIONAL JOURNAL OF INFORMATION MOVEMENT, VOL. 05, ISSUE IX, जनवरी 2021 में 'संत साहित्य और समाज सुधार' शोध–पत्र में डॉ॰ आर॰पी॰ लिखते हैं कि ''भातरीय संत हमेशा श्रेय मार्ग के पथिक बनकर संसार की चकाचौंध एवं माया के आकर्षण से दूर रहे हैं। वर्तमान दौर में संतों की वाणी ही संजीवनी व संसार के रोगों की रामबाण औषधि है।''

विषय विस्तार

संत कबीर निडर, उदार, फक्कड़, अहिंसा व सत्य के प्रबल पक्षधर और बाह्याडम्बरों के घोर विरोधी थे। उनके बारे में रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं, ''कबीर ने ठीक मौके पर जनता के उस बड़े भाग को संभाला जो नाथपंथियों के प्रभाव से प्रेम–भाव और भक्ति रस से शून्य और शुष्क पड़ता जा रहा था। उनके द्वारा यह बहुत आवश्यक कार्य हुआ। इसके साथ ही मनुष्यत्व की सामान्य भावना को आगे करके निम्न श्रेणी की जनता में उन्होंने आत्म गौरव का भाव जगाया और भक्ति के ऊँचे से ऊँचे सोपान की ओर बढ़ने के लिए बढ़ावा दिया।''[4] संत कबीर ने आचरण की शुद्धता पर जोर देकर, आडम्बरों का विरोध करके, आत्म गौरव की भावना को जगाकर, निर्गुण–निराकार ईश्वर की भक्ति पर जोर देकर व मूर्तिपूजा, मन्दिर–मस्जिद आदि का घोर विरोध करके मानवता को वास्तविक जीवन की ओर अग्रसर करके उसके उत्थान व उन्नति के लिए प्रशंसनीय प्रयास किए। कबीर के बारे में डॉ॰ राम कुमार वर्मा लिखते हैं – ''वे एक भावुक और स्पष्टवादी व्यक्ति थे और उन्होंने प्रतिभा के प्रयोग से अपने संदेश को भावात्मक रूप देकर हृदयग्राही बना दिया था। वे धर्म की जिज्ञासा उत्पन्न करने के लिए उलटबासियाँ लिखते थे और संकीर्णता हटाने के लिए लिखते थे। उनकी कला, उनकी स्पष्टवादिता में थी, वे स्वाभाविक एवं मौलिक थे। यह स्वाभाविकता उनकी सबसे बड़ी निधि है।''[5]

मध्ययुगीन समाज में हिन्दुओं की दशा अत्यन्त शोचनीय एवं पीड़ादायक थी। हिन्दू–मुसलमानों में परस्पर कटुता, मतभेद बहुत अधिक बढ़ रहे थे। राम की खोज में वन–वन भटते हुए कबीर को उनका राम 'राम सरीखे जन' में साकार मिल गया था। 'राम सरीखे जन' अर्थात राम के गुणों वाले लोग – संत। निश्चित ही कबीर की खोज व्यर्थ नहीं गई। राम के समान लोगों ने उनकी खोज, जिज्ञासा, इच्छा को पूरा कर दिया था। उनको जन के रूप में राम मिल गया था –

''कबीर वन में फिरा, कारन अपने राम।
राम सरीखे जन मिले, तिन सारे सब काम।''

कबीर का राम दीनदयाल, कृपालु, भक्त वत्सल और भयहारी है। रवीन्द्र कुमार सिंह लिखते हैं कि ''हिन्दू हों या मुसलमान, सगुण वादी हों या निर्गुणवादी, राम भक्त हों या कृष्ण भक्त, दास्य भाव से भक्ति करते हों या माधुर्यभाव से – मध्यकाल के समस्त भक्तों और सन्तों में इस बात पर कोई मतभेद नहीं कि –

''जाकी रही भावना जैसी, हरि मूरति देखी तिन तैसी।''

निश्चित ही यह मान्यता भक्तिशास्त्र की केन्द्रीय मान्यता है। शास्त्रीय शब्दावली में इसी को 'स्वभाव' कहा गया है और भक्ति के लिए 'स्वभाव' को सबसे अधिक महत्त्व दिया गया है।''[6] वैश्वीकरण, भूमण्डलीकरण, बाजारीकरण व विज्ञान, तकनीक की चकाचौंध में हम अपनी मूल संस्कृति से आज अलग हो गये हैं।

वर्तमान के भूमण्डलीकरण व बाजारवाद संस्कृति के दुष्प्रभाव से सभी सन्त कवियों जैसे – कबीर, दादू, नानक, कमाल, रैदास, रज्जब, मलूकदास, बषना, सुन्दरदास, केशवदास, धरनीदास, प्राणनाथ, यारी साहब, सहजोबाई, दया बाई, चरनदास, गुलाब साहब, दूलन दास, गरीबदास, भीखा साहब, रामचरन, पलटू साहब, पानपदास, नितानन्द, तुलसी साहब, निश्चलदास तथा गुरुगोबिन्द सिंह आदि ने साहित्यिक उपवन के गलियारे से अपनी अमृतमयी वाणी से समसामयिक जनमानस की पीड़ा, दुःख, सन्तापों का न केवल निवारण किया बल्कि युगों–युगों तक उनकी वाणी संजीवनी बनी रहेगी। कबीर ने गुरु को सर्वोपरि माना है। उन्होंने गुरु को ईश्वर से भी ज्यादा महत्त्व दिया है –

''गुरु गोबिन्द दोऊ खड़े, काके लागू पाय,
बलिहारी गुरु आपने, जिन गोबिन्द दियो बताय।''

कबीर व सभी सन्तों का कहना है कि गुरु द्वारा प्रेमपूर्वक दिया गया यह राम नाम ऐसा अनुपम और अद्वितीय तत्त्व है, जिसके बदले में देने के लिए शिष्य के पास कोई चीज नहीं है। क्या करें, कुछ भी तो राम नाम की बराबरी का नहीं जिसे गुरु चरणों पर समर्पित करके उन्हें सन्तुष्ट किया जा सके। यह राम नाम ऐसा अद्वितीय तत्त्व है कि मन की मन में रह गई।''[7] कबीर ने निर्गुण ब्रह्म में विश्वास व्यक्त किया। कबीर व संतों ने ''ईश्वर के

रूप के बारे में माना कि वह अतुलनीय है, अप्रतिम है। वह अनादि भी है और अनन्त भी है। वह रूप और अरूप दोनों से ऊपर है, हल्के और भारी से ऊपर है, अनिर्वचनीय है व भूख प्यास से परे है, धूप–छांह से अतीत है, सुख–दुःख से परे है, सर्वव्यापी है, अविगत है, अपरम्पार है, ज्ञान स्वरूप है, विश्व ब्रह्माण्ड के कण–कण में अव्यस्थित है।''[8] कबीर कहते हैं –

पहिले मन में सुमिरै सोई। ता सम तलै अवर नहीं कोई।
कोई न पूजै वासौ पांना। आदि अंति वो किनहुं न जाना।।
रूप अरूप न आवै बोला। हरू–गरू कछु जाइ न तोला।
भूख न त्रिखा धूप नहीं छांही। दुख सुख रहित रहै सब माहीं।।
सबिगत अपरम्पार ब्रह्म, ज्ञान रूप सब ठांम।
बहु विचार करि देखिया, कोई न सारिख राम।।''[9]

कबीर कहते हैं कि सगुण–साकार की उपासना से उत्पन्न विकृतियों का यह हाल है कि जो सभी को एक सूत्र में बांधने वाला (ब्रह्म) है, उसे कोई देख नहीं पाता।[10] मध्ययुगीन समाज में हिन्दू और मुसलमान दोनों ही धर्म के नाम पर आपस में 'तू–तू', 'मैं–मैं' यहां तक कि मार–काट मचा रखी थी। कबीर ने साफ शब्दों में काजी के कहने और करने की बात में भेद देखकर उसे फटकारा। कबीर कहते हैं कि काजी हमेशा झूठ बोलता है। उसकी बन्दगी और पांचों समय की नमाज मात्र ढकोसला है –

''कबीर काजी स्वाद बस, ब्रह्म हंते तब दोय।
चढ़ि मसीति एके कहै, दरि क्यों सांचा होय।''[11]
अथवा
''यह सब झूठी बन्दगी, बिरथा पंच निवाज।
संचे मारे झूठि पढ़ि, काजी करै अकाज।''[12]

कबीर ने समाज में व्याप्त लोकाचारों, अन्धविश्वासों, आडम्बरों व पाखण्डों का खुलकर विरोध किया। उन्होंने अनुभव किया कि जीवित मानव की कोई कद्र नहीं। उनके जीवन काल में उसके प्रति स्नेह, प्यार, त्याग या सेवा भाव परिवार के लोग नहीं दिखाते। लेकिन उसकी मृत्यु के उपरान्त उसको पितर मानकर श्राद्ध करते हैं। कौवे, कुत्तों को अन्न खिलाकर दिवंगत आत्मा को श्रद्धांजलि देते हैं। ब्राह्मणों को बुलाकर दान देते हैं व घरों में हवन, यज्ञ कराते हैं। इन सभी आडम्बरों की आवश्यकता नहीं। कबीर इसका विरोध करते हुए कहते हैं –

''जीवत पितर न मानै कोऊ, मुए सराद्ध कराहीं।
पितर भी बपुरे कहु क्यों पावहिं, कौवा कूकर खाही।''13

कबीर ने अपनी वाणी से तत्कालीन पीर औलियों व हिन्दू धर्म के ठेकेदारों को फटकार लगाई। दोनों धर्मों की पवित्रता और बड़प्पन की उन्होंने ढोल की पोल खोल कर रख दी। हिन्दू वैसे तो शूद्रों का गागर का स्पर्श नहीं करने देते लेकिन व्याभिचारी करते समय उनकी स्त्रियों के चुम्बन लेते हैं। इसी प्रकार मुसलमान मांस का भक्षण करते हैं। उनके विवाह सम्बन्ध भी घरों में ही मौसी–चाचा–ताऊ की बेटी–बेटे के साथ हो जाते हैं। क्या यही हिन्दू धर्म व मुसलमानों का इस्लाम है। वे मानते हैं कि दोनों समुदाय अपने–अपने पथ से भ्रष्ट हो चुके हैं –

''अरे इन दोउन राह न पाई।
हिन्दू अपनी करैं बड़ाई, गागर छुवन न देई।
वेश्या की पायन तर सोवैं, यह देखो हिन्दुआई।।
मुसलमानों के पीर औलिया, मुर्गी मुर्गा खाई।
खाला केरी बेटी ब्याहैं, घर ही में करैं सगाई।''
अथवा
''हिन्दुअन की हिन्दुआई देखी, तुरकन की तुरकाई।
कहै कबीर सुनौ हे साधौ, कौन राह हवै जाई।।''[14]

कबीर ने धर्मग्रंथों की निंदा की व उनके प्रति उपेक्षा दिखाई। क्योंकि कबीर व संत कवि जिस ज्ञान को जन–जन में फैलाना चाहते थे, वह धर्म ग्रन्थों का ज्ञान नहीं था, वे तो आत्मानुभव पर टिका हुआ खरा ज्ञान था। स्वयं का अनुभव धर्म ग्रन्थों के ज्ञान से ज्यादा सही होता है। इसी भावना से कबीर कहते हैं कि –

''तू कहता कागद की लेखी।
मैं कहता हूँ आंखिन देखी।
मैं कहता सुझावन हारी।
तू रखता उरझाय रे।।''[15]

कबीर अवतारवाद के घोर विरोधी थी। कबीर का खण्डन समाज को सजग एवं सचेत करने के लिए था। उनका लक्ष्य लोगों को अवतारवाद के प्रति सावधान करना था। वे कहते हैं –

''आया था संसार में देखन को बहु रूप।
कहै कबीरा सन्त हो, पड़ि गया नजर अनूप।''16

सन्त साहित्य में बहु प्रचलित उपासना–रूपों में मूर्ति–पूजा का खण्डन मिलता है। मध्ययुगीन समाज में धर्म के अनेक ठेकेदारों ने भगवान को मन्दिर–मस्जिद व मूर्तियों तक सीमित कर दिया था। बहुदेवोपासना से सामाजिक एकता भी खण्डित हो रही थी। समाज में अशान्ति फैल रही थी। कबीर ने इसका घोर विरोध किया –

''पाहण केरा पूतला, करि पूजे करतार।
इही भरोसे जो रहे, ते बूड़े काली धार।''[17]
अथवा
''लाडू, लावन, लापसी, पूजा चढ़े अपार।
पूजि पुजारी ले गया, मूरत के मुहिं छार।''

कबीर कहते हैं कि छापा, तिलक, पीले वस्त्र, या माला धारण करके कोई साधु या महात्मा नहीं बन सकता। कबीर चाहते थे कि समाज में स्वस्थ परम्परा हो। अंधविश्वासों और दल–दल में फंसे लोग बाहर निकलें। कबीर ने अनेक पाखण्डी, ढोंगी, साधुओं पर व्यंग्य करते हुए लिखा –

''कबीर कलि खोटी भई, मुनियर मिले न कोई।
लालचि, लोभी, मसखरा, तिनकूं आदर होई।''[19]

मध्ययुगीन समाज में आडम्बरों, अंधविश्वासों में हिन्दुओं द्वारा तीर्थ यात्रा व मुसलमानों की हज यात्रा का विशेष प्रचलन था। लोग मानते थे कि जीवन के सभी पाप गंगा स्नान करने या हज यात्रा से समाप्त हो जायेंगे। कबीर मानते थे कि ब्रह्म शरीर में है, वैसे ही तीर्थ भी शरीर के अन्दर है। अनेक पंडो द्वारा दर्शनार्थियों का उत्पीड़न व शोषण किया जाता था। कबीर इससे बहुत दुखी थे। वे कहते हैं –

''जोगी, जपी, तपी, संनियासी, बहु तीरथ भ्रमना।

लुंचित, मुंडित, मौनी, जट धारी, अंति तऊ मरना।।''[20]
अथवा

''तीरथ करि–करि जग मुवा, डूबे पांणी न्हाइ।
रामंहि राम जपंतड़ा, काल घसीट्या जाइ।।''[21]

कबीर ने अपनी वाणी से बहुदेववाद का भी विरोध किया। हिन्दू और मुसलमान दोनों बहुदेववाद के जाल में फंसे थे। कबीर लिखते हैं –

''कहैं कबीर भरम सब भागा। एक निरंजन सूं मन लागा।''[22]

संतों ने सच्चे भक्त को आलंकारिक भाषा में पतिव्रता नारी की संज्ञा दी है। कबीर मानते हैं कि अनेक देवी देवताओं को मानने वाला व्यक्ति उस पतित औरत के समान है जो अपने पति का बिस्तर तज कर अन्य पुरुषों पर आसक्त होकर उनके बिस्तर पर सोती है। वे कहते हैं कि –

''नारि कहावै पीव की, रहै और संग सोय।
जार सदा मन में बसै, खसम खुशी क्यों होय।।''[23]

कबीर ने तत्कालीन समाज में हिन्दू और मुसलमानों के बीच की दूरी को समाप्त करने की भरसक कोशिश की। सन्त सामाजिक एकता के पक्षधर थे। कबीर ने अनेकों बार दोनों धर्मों की आन्तरिक एकता की बात कही। उन्होंने कहा कि राम–रहीम एक हैं –

''कहै कबीरा, दास फकीरा, अपनी राह चलि भाई।
हिन्दू तुरूक का करता एकै, ता गति लखि न जाई।।''[24]

''किरतिम सुन्नति और जनेऊ
हिन्दू तुरूक न जाने भेऊ।''[25]

कबीर मानते हैं कि मानव की कथनी–करनी में अन्तर नहीं होना चाहिए। वे कथनी–बदनी को जंजाल मानते हैं। किसी भी व्यक्ति को जो वो कहता है, वही करना भी चाहिए। कथनी कितनी भी ऊँची हो, बिना करनी के राम नहीं मिलता –

''कथनी बदणी सव जंजाल। भाव भगति अरू राम निराल।
कथै बदै सुणै सब कोई। कथे न होई कीए होई।।''[26]

अथवा

''लाया साखि बनाय करि, इत उत अच्छर काटि।
कह कबीर कब लग जियै, जुठी पतल चाटि।।''[27]

उपरोक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि कबीर की वाणी मानव मूल्यों का मंगलकोष है। कबीर के सन्देशों ने तत्कालीन मध्ययुगीन समाज के विकट समय में भी मानवता को एकता और अखण्डता का संदेश दिया। वही संदेश आज भी प्रासंगिक है। कबीर ने धर्म और जाति विशेष के भेदभावों का घोर विरोध किया जो वर्तमान युग में प्रेरक एवं प्रासंगिक है। उन्होंने सभी धर्मों, वर्गों, क्षेत्रों, गरीब–अमीर व अलग–अलग समुदाय के लोगों को समता का सन्देश देकर युगों–युगो से दिग्भ्रमित, पीड़ित मानवता को कल्याण एवं परोपकार का रास्ता दिखाया। कबीर की वाणी मध्ययुगीन समाज से लेकर आज तक प्रासंगिक थी, आज भी है और भविष्य में भी रहेगी। कबीर की वाणी हमें अमृत के समान जीवन में मधुर, कोमल, शांत, आत्मीयता, सहयोग के भाव की अनुभूति कराती है। निश्चित ही कबीर के साहित्य को पढ़कर, सुनकर व आत्मसात करके कोई भी मनुष्य व समाज संयमित, अनुशासित जीवन जी सकता है। कबीर की वाणी जन जीवन को नकारात्मक सोच से बाहर निकाल कर सकारात्मक सन्देश देती नज़र आती है। उन्होंने अनेक अवसरों पर जाति–पाति, छुआछूत, सामाजिक विषमता, पाखण्ड, अत्याचार, जीव हिंसा, भोगवाद, अंधविश्वास आदि के प्रति प्रेरक संदेश अपनी वाणी में दिए हैं, जो आधुनिक युग में अत्यन्त प्रासंगिक हैं।

निष्कर्ष

सारांशतः भूमण्डलीकरण के दौर में बाजारवादी संस्कृति के दुष्प्रभाव से मानव मन में असंतोष, डर, अशान्ति, स्वार्थपरता, भ्रष्टाचार, तनाव व अवसाद भरा पड़ा है। आधुनिक युग में जीवन मूल्यों व आदर्शों का पतन हुआ है। आज असंख्य चुनौतियाँ, समस्याएँ हमारे सामने खड़ी हैं। ऐसे घोर कलि–काल में कबीर की वाणी ही वह अमोघ शक्ति है, जो हमें गुरुमंत्र के रूप में बुरे दौर से निजात दिला सकती है। आधुनिक युग में सांस्कृतिक प्रदूषण एवं सनातन मूल्यों की उपेक्षा हो रही है। अतीत में भारत देश विश्व गुरु की पदवी को सुशोभित कर चुका है। आधुनिक युग में हमें अपने अतीत के गौरव को बचाने के लिए सन्तों के साहित्य विशेष तौर से कबीर की वाणी रूपी उपवन के मीठे, मनमोहक फल चखने होंगे। कबीर की वाणी रूपी फल के मात्र रसास्वादन से अनेक तत्कालिक बीमारियों से राहत मिल जाती है। संतों का संदेश **''**सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः'' दिग्भ्रमित एवं पीड़ित मानवता के लिए वर्तमान युग में अत्यन्त प्रासंगिक एवं प्रेरक हैं। कबीर आदि सन्तों की वाणी के लिए गुरु रवीन्द्र नाथ टैगोर की उक्ति ''विश्व शान्ति के लिए सन्तों का काव्य मार्गदर्शक सिद्ध होता है'' आज चरितार्थ होती दिखाई देती है। स्वयं महात्मा गांधी ने भी सन्तों की वाणी का अनुसरण करते हुए उनके द्वारा दिखाए हुए रास्ते पर चलकर 'हरिजन' नाम की पुष्टि की। अतः हम कह सकते हैं कि आधुनिक युग में कबीर की वाणी मानवता के लिए मंगल कोष सिद्ध हो सकती है, इसमें कोई अतिश्योक्ति नहीं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *संत–काव्य की सामाजिक प्रासंगिकता, रवीन्द्र कुमार, पृ॰ 13*
2. *डॉ॰ शिवकुमार शर्मा, हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, पृ॰ 129–130*
3. *संत काव्य की सामाजिक प्रासंगिकता, रवीन्द्र कुमार, पृ॰ 13*
4. *हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ॰ 56, सोलहवां पुनर्मुद्रण*
5. *हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ॰ रामकुमार वर्मा, पृ॰ 60*
6. *सन्त काव्य की सामाजिक प्रासंगिकता, रवीन्द्र कुमार सिंह, पृ॰ 78*
7. *सं॰ पारसनाथ तिवारी, कबीर ग्रंथावली, पद 286, पृ॰ 170*
8. *संत काव्य की सामाजिक प्रासंगिकता, रवीन्द्र कुमार सिंह, पृ॰ 81*
9. *कबीर ग्रंथावली, तिवारी, रमैनी 2, पृ॰ 118, संस्करण प्रथम*

10. *अलख निरंजन लखै न कोई। जेहि बंधे बंधा सब लोई।। कबीर ग्रन्थावली, पृ॰ 125*
11. *सं॰ डॉ॰ श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रंथावली, पृ॰ 33*
12. *वही, पृ॰ 33*
13. *वही, पृ॰ 221*
14. *सन्त सुधासार, पृ॰ 471*
15. *आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृ॰ 144*
16. *सं॰ श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रंथावली, पृ॰ 11*
17. *वही, पृ॰ 34*
18. *सं॰ पारसनाथ तिवारी, कबीर ग्रंथावली, पृ॰ 109*
19. *सं॰ श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रंथावली, पृ॰ 28*
20. *वही, पृ॰ 243*
21. *वही, पृ॰ 29*
22. *वही, पृ॰ 5*
23. *संतवाणी संग्रह, भाग–1, पृ॰ 42*
24. *सं॰ श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रंथावली, पृ॰ 83*
25. *सं॰ श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रंथावली, पृ॰ 120*
26. *सं॰ परशुराम चतुर्वेदी, संत काव्य, पृ॰ 188*
27. *सन्त बानी संग्रह (कबीर), भाग–1, पृ॰ 47*